भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में संस्थाओं की पतनशीलता

शशि भूषण कुमार

Ikjk'k% राजनीतिक व्यवस्था में नेतृत्व की सकारात्मक भूमिका एवं संस्थाओं के पारदर्शी कार्य-संचालन पर बहुत हद तक संस्थाओं का उत्तरोत्तर विकास निर्भर करता है। दुर्भाग्यवश, हमारे देश के संदर्भ में उपरोक्त दोनों ही बातें नकारात्मक रूप में साठ के दशक के अंतिम वर्षों से ही दृष्टिगोचर होने लगीं। जिन प्रतिमानों पर राजनीतिक व्यवस्था की नींव रखी गई, वो मजबूत होने की बजाय धीरे-धीरे कमजोर होने लगे। अपेक्षित एवं समय पर सुधारात्मक उपाय नहीं खोजे जाने के कारण आज समूची राजनीतिक व्यवस्था पतनशीलता की ओर अग्रसर है। हमारी सामाजिक संरचना व परंपरा तथा राजनीतिक संस्थाओं में परस्पर अनुकूलता का अभाव संस्थाओं की पतनशीलता का कारण हो सकता है लेकिन इन कारकों से कहीं ज्यादा गंभीर तत्कालीन नेतृत्व के द्वारा भारतीय शासन व्यवस्था के संदर्भ में गांधी के सलाह को सम्मान न दिया जाना है। एक तरफ सदाचार एवं सादगी में विश्वास के विचार प्रदर्शित हो रहे थे जो भारतीयता के अनुरूप कल्याण के कारण बनते, तो दूसरी ओर उपभोक्तावाद, भौतिकवाद, विज्ञान और तकनीक के प्रयोग, शहरीकरण और केन्द्रीकृत योजनाओं के द्वारा गरीबी -उन्मूलन के विचार प्रदर्शित हो रहे थे। प्रस्तुत आलेख में उपरोक्त संदर्भ में ही संस्थाओं की पतनशीलता के विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

i"BHkfe vkj ifji{;

राष्ट्र-राज्यों के पिछड़ेपन के कारण कुछ विचारक सांस्कृतिक, भौगोलिक, पारिस्थितिक या सामाजिक कारकों में खोजते हैं[1] किन्तु हम मानकर चलते हैं कि उनके पिछड़ेपन का मूल कारण उनकी सुदृढ़ और स्वायत्त संस्थाओं को विकसित न कर पाने की असफलता है। भारत के संदर्भ में इस असफलता का विशेष मौलिक कारण है। वैचारिक धरातल पर जवाहरलाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल और बाबा साहेब भीमराव

अम्बेडकर ने गांधी के विचारों को सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक धरातलों पर जिस तरह अस्वीकृत किया (जिसकी अब तक के शोधकर्ताओं और विद्वानों ने जानबूझकर अनदेखी की है)- उसमें भारत की राजनीतिक संस्थाओं के पिछड़ेपन और अर्द्धविकास के कारण विद्यमान हैं। विचारों से प्रतिमानों (Models) का निर्माण हुआ एवं प्रतिमानों से संस्थाएँ बनीं या बिगड़ी हैं। मोहनदास करमचंद गांधी[2], विनोबा भावे[3], रबीन्द्र नाथ टैगोर[4] और सर्वपल्ली राधाकृष्णन[5] जैसे लोगों के विचार सदाचार एवं सादगी में विश्वास को प्रदर्शित करते थे किन्तु नेहरू उपभोक्तावाद, भौतिकवाद, विज्ञान और तकनीक के प्रयोग, शहरीकरण और केन्द्रीकृत योजनाओं के द्वारा गरीबी-उन्मूलन में विश्वास रखते थे। अक्टूबर-नवम्बर 1945 में गांधी और नेहरू के बीच के पत्राचार (गांधी ने दो चिटिठ्याँ लिखीं, नेहरू ने एक का ही जवाब दिया; *दूसरा* अनुत्तरित रह गया)[6] में व्यक्त विचारों के अन्तर नए राष्ट्र-राज्य में संस्था-निर्माण की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हैं। 5 अक्टूबर 1945 को गांधी ने नेहरू को पहला पत्र लिखा जिसके अंश सुधीर चंद्रा द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित *'द टाईम्स ऑफ इंडिया'*, 08.11. 1987 में इन शब्दों में प्रस्तुत है :

I believe that if India is to attain true freedom, and through India the world as well, then sooner or later we will have to live in villages-in-huts, not in palaces. A few billion people can never live happily and peaceably in cities and palaces; nor by killing one another, that is, by violence, or through untruth…

That truth and non-violence we can glimpse only in the simplicity of villages… The essence of what I say is that the things required for human life must be individually controlled by every person– the individual cannot be saved without this control…

गांधी के अनुसार 'स्व का अर्थ है–आत्म नियंत्रण और अपने हाथों और पैरों से काम करना, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं का उत्पादन करना; और स्वराज का अर्थ है–राष्ट्रीय स्तर पर नियंत्रित सरकार की स्थापना।[7] पर गांधी चाहते थे कि ग्रामीण गणतंत्र राष्ट्रीय सरकार को नियंत्रित करें।[8] नेहरू और अम्बेडकर इसके विपरीत विचार रखते थे कि ग्रामीण भारत ''स्थानीयता, अज्ञानता, संकीर्णता और सम्प्रदायवाद का कुंड (Sink) है।[9] अतः गांधी के विकेन्द्रित गांव से संसद की ओर तक जाने वाले राज्य (Bottom-up state) की जगह पर नेहरू-पटेल-अम्बेडकर केन्द्रित संसद से गांव की ओर वाले राज्य (Top-down state) के पक्षधर थे जो उनके अनुसार भारत के नियोजित विकास का माध्यम बनेगा। ग्रामीण उद्योगों, स्वदेशी, कुटीर उद्योगों और अपनी अनिवार्यताओं के अनुसार चीजों को उत्पादित करने की ग्रामीणों के द्वारा प्रयासों पर गांधी का आर्थिक प्रतिमान आश्रित था पर नेहरू-पटेल-अम्बेडकर के विकास प्रतिमान में उनकी जगह एक नागरीय और भारी उद्योग पर आधारित केन्द्रीय शासन द्वारा निर्मित और संचालित योजनाबद्ध विकास के प्रतिमान ने ले ली। नेहरू ने

योजना आयोग नामक संविधानेत्तर संस्था को 'सुपर कैबिनेट' के रूप में प्रतिस्थापित किया।

हिन्दू-मुस्लिम विवाद की जड़ें भी गांधी-नेहरू विभेद में खोजी गयी हैं। *रूडोल्फ और रूडोल्फ* नेहरू के 1929 के 'पूर्ण स्वराज' के प्रस्ताव को भारत-पाकिस्तान के विभाजन और हिन्दू-मुस्लिम कलह की जड़ें मानते हैं। गांधी ने 1929 में पत्र लिखकर नेहरू को कहा था कि आपका प्रस्ताव जल्दीबाजी में लिया गया प्रस्ताव है।[10] गांधी, तेज बहादुर सप्रू, मोतीलाल नेहरू 1927 से ही *'डोमिनियन स्टेट्स'* की मांग के पक्षधार थे और उसी के अंतर्गत स्वतंत्रता चाहते थे, जैसा कनाडा में हुआ। 'डोमिनियन स्टेट्स' में ब्रिटेन का हस्तक्षेप रहता जिससे भारत के अल्पसंख्यक अपने प्रतिनिधित्व और सुरक्षा के विषय में निश्चिंत अनुभव करते। नेहरू-पटेल ने इसकी जगह पर बहुमत पर आधारित संसदीय सरकार की स्थापना के लिए 1929 से ही गांधी की इच्छा के विरूद्ध काम करना शुरू कर दिया।[11] इससे मुसलमान भयभीत हो गए कि हिन्दुओं का निर्दय बहुमत उनपर मनमानी से शासन करेगा और वे स्वतंत्र भारत में हिन्दुओं के अधीन रहकर जीवन-यापन करने को विवश हो जायेंगे। *रूडोल्फ और रूडोल्फ* का संकेत है कि स्वतंत्रता के बाद मुसलमानों को पंथनिरपेक्षता के नाम पर सुरक्षा देने का दिखावा किया गया। यदि गांधी की बात मानी जाती तो भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप में 1946 के विभाजन काल में इतना बड़ा साम्प्रदायिक नरसंहार नहीं होता। गांधी बहुल संस्कृति के प्रबंधक, बहुल धर्म में आस्थावान तथा बहुलता में एकता के प्रतीक थे; वे धर्म और राजनीति की पृथकता के ब्रिटिश बनावटी ढकोसले में विश्वास नहीं करते थे और जीवन में अध्यात्म और नैतिकता की अनिवार्यता पर बल डालते थे, चाहे वे राजनीतिक जीवन ही क्यों न हो। उनके अनुसार नैतिकता सभी धर्मों की मूल और मानवता का आधार है। गांधी हिन्दू-मुस्लिम-पारसी-ईसाई किसी भी धर्म के अनुयायियों में भेद नहीं करते थे लेकिन यह विश्वास नहीं करते थे (जैसा राजीव गांधी ने 1989 में प्रधानमंत्री के रूप में अपने निर्णयों से किया) कि मुस्लिम कुरान या शैरियत में लिखे गए कानून से शासित हों और हिन्दू सनातनी शास्त्रों से। सभी धर्मों के लोगों के लिए भारतीय संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में सामान्य सर्वव्यापी संहिता के निर्माण का प्रावधान है किन्तु ऐसी संहिता का निर्माण नहीं हो सका। रूडोल्फ यह तर्क भी प्रस्तुत करते हैं कि नेहरू एकात्मक राज्य में विश्वास करते थे जबकि गांधी विभिन्न स्तरों में विभाजित संघीय राज्य की स्थापना में।[12] उपर्युक्त गांधी-नेहरू विचारधारात्मक अंतर भारत की राजनीतिक सस्थाओं के निर्माण, विकास और सत्तर-अस्सी के दशक आते-आते पतन के कारण बने। नेहरू ने गांधी की बात न मानकर संस्थाओं के लिए संकट उत्पन्न किया।

jktuhfrd.vkfFkd ekudk d: iHkko l: iru

1950 के दशक में राजनीतिक या प्रशासनिक कार्यपालिका में सादगी और सदाचार बाद के दशकों से तुलनात्मक ढ़ंग से एक हद तक संतोषजनक थे। किन्तु यह

एक सापेक्ष वक्तव्य है। 1946 के जीप घोटाले में तत्कालीन भारत के ब्रिटिश उच्चायुक्त बी. के. कृष्णा मेनन; मुंद्रा कांड में तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री टी. टी. कृष्णाचारी; नेहरू मंत्रिपरिषद के दो राज्य मंत्रियों; कई घोटालों में पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरों और ओडिशा (तब का उड़ीसा) के तत्कालीन मुख्यमंत्री बीजू पटनायक की संलिप्तताओं के आरोप लगाए जाते थे परन्तु नेहरू ने प्रधानमंत्री के रूप में इन आरोपों के विरूद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाया। कैरों को प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने नेहरू द्वारा नियुक्त दास कमिटी, जिसका प्रतिवेदन जानबूझकर नेहरू के शासन काल के पश्चात ही प्रस्तुत किया गया, के आधार पर हटाया और बीजू पटनायक को शास्त्री ने अपने स्थान पर दूसरे मुख्यमंत्री को मनोनीत करने की छूट प्रदान करते हुए उन्हें भी पदमुक्त किया। बिहार के मंत्रियों के कदाचार की जाँच के लिए अय्यर आयोग का गठन पाँच कांग्रेसी मंत्रियों, जिनमें बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री के. बी. सहाय तथा अन्य पाँच मंत्रियों महेश सिन्हा, सत्येन्द्र नारायण सिन्हा, राम लखन सिंह यादव, राघवेन्द्र नारायण सिंह तथा अंबिका शरण सिंह शामिल थे, के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच के लिए गठित हुआ जिसने अधिकांश आरोपों को सही पाया।[13] मधोलकर आयोग ने 19 नवम्बर 1967 को महामाया प्रसाद सिन्हा के मुख्यमंत्रित्व काल में गठित संयुक्त मोर्चा मंत्रिपरिषद के 14 मंत्रियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों को सही पाया।[14] कार्यपालिका में व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रश्न संस्थाओं के पतन की भयानक समस्या बन गई।

कार्यपालिका के चरित्र का आदर्शपरक मानक कौटिल्य और प्लेटो से लेकर प्रशासनिक सुधार आयोगों (1967 और 2009 में गठित) ने प्रस्तुत किया है। प्रशासनिक सुधार आयोग (2009) ने एक प्रतिवेदन में विधि द्वारा शासित, प्रत्युत्तरदायी, जवाबदेह, संस्थात्मक, विकेन्द्रीकृत, पारदर्शी, नैतिक शासन एवं असैनिक सेवा (जिसमें 2014 में नरेन्द्र मोदी सरकार के द्वारा पुलिस कानून सुधार का प्रस्ताव भी जोड़ा गया है), परिष्कृत प्रक्रियाएँ, शासन की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए सेवाओं के स्वतंत्र और आवधिक मूल्यांकन के प्रावधान, न्याय साम्यता और कार्यकुशलता को सुशासन के मानक माने और फरवरी 2009 के उपर्युक्त आयोग के प्रतिवेदन ने शासन की नागरिक के प्रति प्रतिबद्धता को अनिवार्य माना। 15 अप्रैल 2009 में समर्पित इसी आयोग के प्रतिवेदन ने सरकार के लिए पाँच कार्यवाहियोंः ग्रामीण विकास, पेय जलापूर्ति, आवास उपलब्धता, नागरीय निर्धनता उन्मूलन, शहरी विकास और पंचायती राज व्यवस्था के संचालन को प्राथमिकता देने की अनुशंसा की।[16] 1946 में गांधी ने अपने आर्थिक प्रतिमान में इन्हीं मानकों को समाहित किया था पर 2009 में (संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों के द्वारा स्थानीय संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने के बाद भी) उन्हें ही दुहरा रहे हैं और 72 वर्षों में स्थानीय संस्थाओं को समुचित ढ़ंग से संचालित नहीं कर पाए। 2009 के प्रतिवेदन में भी आयोग ने सामान्य व्यक्ति की सामान्य आवश्यकताओं जैसे अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, पौष्टिकता, सुरक्षा (विशेषतः महिला सुरक्षा एवं शिशु

कल्याण) पर आवश्यक बल नहीं दिया जो राष्ट्रीय विकास के विस्मयकारी एवं दुर्भाग्यपूर्ण अनुभूतिहीनता के द्योतक हैं। अन्न सुरक्षा कानून, छह से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, सूचना और सेवा श्रम के अधिकार बाद में दिए गए पर ये सभी समुचित रूप से लागू नहीं हैं।

भारत की स्वतंत्रता की अर्द्धरात्रि में संविधान सभा में राधाकृष्णन ने कहा था कि स्वतंत्र भारत का मूल्यांकन इस बात पर निर्भर करेगा कि वह अपने सामान्य व्यक्तियों के हितों को किस तरीके से और कितनी अवधि में पूर्ण करता है।[17] गांधी ने अंत्योदय को भारत का लक्ष्य घोषित किया था और राजनीतक अभिजनों के जीवन में सरलता और सादगी को अपनाने को अनिवार्य माना था। विनोबा अपनी पदयात्रा के लिए प्रसिद्ध थे। राजेन्द्र प्रसाद और पटेल सादे पोशाक पहनने और मितव्ययिता के साथ जीवन-यापन के लिए प्रसिद्ध थे। जब राजनीतिक कार्यपालिका ऐसा प्रतिमान उपस्थित करती तो नौकरशाही, जिसे गरीब जनता से सीधे संपर्क बनाना था, भी जनजीवन को प्रतिविंबित करती, न कि पश्चिमी या नागरीय सभ्यता या संस्कृति को। पर गांधी, टैगोर, विनोबा या राधाकृष्णन की ये आशाएँ पूरी नहीं हुई। गांधी-नेहरू विकास प्रतिमान में जो महान अंतर छिपा है, वही आगे चलकर पारंपरिक संस्थाओं के पतन का कारक बन गया।

गांधी ग्राम गणतंत्रों की स्वायत्तता तथा ग्राम पंचायतों के समूहों को मिलाकर राष्ट्रीय पंचायत के गठन के पक्षधर थे।[18] लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों को विकसित और हाथों से बने कपड़े (खादी), गुड़ और नीरा के प्रयोग पर बल डालते थे। संविधान सभा ने श्रीमन् नारायण द्वारा प्रस्तुत पंचायती राज की अवधारणा पर आधारित भारतीय संविधान के प्रारूप को अस्वीकार कर दिया। गांधी दलितों की सेवा किया करते थे और उन्होंने नेहरू को सलाह दी कि कांग्रेस के मंत्रिगण यदि दलित बस्तियों में निवास करें तो यह दलित के लिए सम्मानजनक होगा और मंत्रीगण भी उपभोक्तवादी संस्कृति से मुक्त रहेंगे। *हिन्द स्वराज* में गांधी ने ब्रिटिश संसद को वेश्या की संज्ञा दी थी। संसद की संस्था के विषय में उनकी यही सामान्य राय थी। वे मशीनी सभ्यता के विकास के विरोधी थे, विशेषतः वैसी मशीनें जो सामान्य मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरी न करती हो। उन्होंने भांप लिया था कि मशीनी ज्ञान की क्रांति आय में असमानता को बढ़ायेगी और यह असमानता एक बिंदु के बाद सामाजिक तनाव उत्पन्न करेगी।[19] गांधीवाद से प्रभावति होकर विनोद खोसला जैसे कम्प्यूटर और सूचना तकनीक के विख्यात विशेषज्ञ स्वीकार करने लगे हैं कि बाजार में बड़ी मात्रा में सामानों के होने, विकास दर की वृद्धि होने और बेहतर शिक्षा और कौशल के बावजूद अस्सी प्रतिशत जनता का भाग आवश्यक गति से बुद्धिमान सॉफ्टवेयर सिस्टम को पराजित नहीं कर सकेंगे।[20] मार्क एंडरसन के अनुसार यह नौकरियों की उपलब्धता में भी भारी कमी लाएगी।[21] अधिकांश लोगों के जीवन-स्तर की गुणवत्ता कम हो जाएगी

और वे संस्कृति, कला, विज्ञान, रचनात्मकता, दर्शन, प्रयोगात्मकता, खोज और रोमांच में भाग नहीं ले सकेंगे।[22] अतः थॉमस पिकेटी जो गांधीवादियों, समाजवादियों और विनोबा की भाषा का प्रयोग करते हुए आधुनिक सामाज में आय के पुनर्वितरण की जोर-शोर से वकालत कर रहे हैं, की बात माननी होगी।[23] *रूडोल्फ एवं रूडोल्फ* (1984 और 2009 में लिखित पुस्तकों) के अनुसार गांधी– परम्परा, आधुनिकतावाद और नव आधुनिकतावाद– तीनों के पोषक थे जबकि नेहरू आधुनिकतावाद के, जिन्होंने गांधीवाद के पूर्व आधुनिकतावाद के कई मौलिक तत्वों का प्रतिकार किया। वे भूतपूर्व ब्रिटिश सेनाध्यक्ष के लंबे-चौड़े आवास को तीन मूर्ति भवन के रूप में परिणत कर स्वयं निवास करने लगे। अन्य मंत्रियों को भी बड़े-बड़े बंगले दिल्ली के लंबे-चौड़े राजपथों पर आवंटित किए गए। राष्ट्रपति भी गवर्नर जनरल के 352 कमरों वाले आवास, जिसमें मुगल गार्डन भी सम्मिलित था, में रहने लगे। सादगी का कहीं कोई प्रतीक के रूप में भी प्रदर्शन नहीं था।

नेहरू ने 'समाज के सामजवादी प्रतिमान' को अपनी आर्थिक नीति का मूलाधार कांग्रेस के अवाडी सत्र, 1955 में घोषित किया। 1957 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना अर्थशास्त्री महालनोविस की सलाह पर निर्मित हुई जिसमें भारी उद्योगों पर बल डाला गया। नेहरू सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को बढ़ावा देने के पक्षधर थे हालांकि घनश्याम दास बिड़ला जैसे बड़े पूँजीपति कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य थे और आर्थिक नीति के निर्माण में वे नेहरू के पक्षधर रहते थे।

भारत के संविधान की प्रस्तावना एवं मूल अधिकारों तथा राज्य नीति के निर्देशक तत्वों वाले अध्याय में भारत की तत्कालीन 40 करोड़ (अब 1.30 अरब) जनता के लिए समाजवादी और उदारवादी लक्ष्यों को समाहित किया गया। स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुता एवं व्यक्ति की गरिमा जैसे आदर्श प्रस्तावना में शामिल किए गए। धन का एक ही हाथों में संकेन्द्रण को रोकने तथा वितरणात्मक न्याय की स्थापना करने के आदर्श राज्य नीति के निर्देशक तत्व में शामिल किए गए। लेकिन यह संस्थाओं एवं नेतृत्व के पतन का द्योतक है कि आजादी के 74 वर्षों के बाद भी पूरी दुनिया के कुछ गरीबों में से एक-तिहाई भारत में रहते हैं।

2017 में प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भारत का स्थान 190 देशों में 122वाँ था। भारत में तीस लाख लोग टी. बी. से पीड़ित हैं। हम स्थापित आदर्शों से इतनी दूर क्यों रह गए? यदि 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा कि दिल्ली से भेजे गए सौ पैसे में जनता तक 15 पैसे पहुँचते हैं तो कौन सी संस्थाएँ और किन-किन प्रकार के बिचौलियों (यथा– राजनीतिक नेताओं, असैनिक सेवा के सदस्यों, कार्यकर्ताओं, राजनीतिक दलों, गैरसरकारी संगठनों या अपराधी तत्वों) को इस भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेवार माना जाए?

नेहरू के समाज का समाजवादी प्रतिमान, 80-90 के दशक से भारत का उदारीकरण की ओर झुकाव और 2014 में उदारीकरण के संवर्धित रूप को भारत की

आर्थिक और वैदेशिक नीति में समाहित करना संविधान के लक्ष्यों के विपरीत है। समानता, स्वतंत्रता, न्याय और जनतंत्र जनता के बड़े भाग के लिए अनुपलब्ध हैं। समाजवाद संविधान की आधारभूत विचारधारा में सन्निहित है जबकि उदारीकरण, जैसा गांधी, एंडरसन, खोसला और पिकेटी को आशंका थी, इसका प्रतिवाद है। असमानता की हदें 74 वर्षों के बाद भी बढ़ रही है। भारत के दस प्रतिशत उद्योगपति विश्व के धनी व्यक्तियों में गिने जाने लगे हैं जबकि 33 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। जीवन-यापन के लिए सबों को यथेष्ट रूप से अन्न, वस्त्र, आवास, पौष्टिक पदार्थ, चिकित्सा, शिक्षा की सुविधाओं की उपलब्धता नहीं है और अंत्योदय के सपने साकार नहीं हो पा रहे हैं। बढ़ती असमानता और भ्रष्टाचार के लिए याराना पूँजीवादी (crony capitalism) काल में राजनीतिक कार्यपालिका, असैनिक सेवा और औद्योगिक एवं व्यापारिक घरानों के बीच तालमेल जिम्मेवार है। शिक्षित युवा रोजगार 1967, 1989 और 2014 के चुनावों का मुख्य मुद्दा था पर अभी भी बहुत बड़ी संख्या में बेरोजगारी और मूल्य वृद्धि के चलते वे, किसान और मजदूर भूख के शिकार हैं। विकास की दर उदारीकरण के प्रथम चरण में बढ़ी, पुनः घटी और 2014 में 5.5 प्रतिशत थी। आज कोरोना काल में विकास दर की बात ही बेमानी लगती है जबकि चीन को छोड़कर समूचे विश्व की अर्थव्यवस्था नकारात्मक स्थिति में है जिसकी एक-दो वर्षों में ऊपर बढ़ने की संभावना नगण्य है। नेहरू और उत्तर नेहरू नेताओं में अधिकांश का आधुनिकतावाद, पश्चिमीकरण और उपभोक्तावाद गांधीवादी स्वदेशी की अवधारणा के विरूद्ध खड़ा हो गया और नरेन्द्र मोदी का *'मेक इन इंडिया'* भी आशानुरूप विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने में बहुत ज्यादा कामयाब न हो सका है। इंदिरा गाँधी के 'गरीबी हटाओ' के नारे केवल जनवादी उभार लाने और सत्ता पाने के, न कि सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने के, कठोर प्रयास थे। इसीलिए बांग्लादेश के विजय के बाद 'दुर्गा' की उपाधि प्राप्त होने पर भी उनकी राजनीतिक छवि फीकी हो गई। भारत के गांव आज भी संरचनात्मक विकास और नगर नागरीय सुविधाओं से वंचित हैं। नगरीकरण की जगह मलीन बस्तियों का भरमार हुआ; पर्यावरण का प्रदूषण हुआ और मानव चरित्र का अवमूल्यन हुआ। जनता का बड़ा भाग साक्षरता, शिक्षा, वस्त्र, स्वास्थ्य, अन्न सुरक्षा, पौष्टिकता और आवास जैसी जीवन-यापन की मूलभूत आवश्यकताओं से आज भी वंचित है। कमजोर वर्गों की समस्याएँ और भी विकट हैं। 2014 एवं 2019 के आम चुनावों में किए गए मोदी के वादे भी छलावा साबित हो रहे हैं। अर्थव्यवस्था में गिरावट एवं रोजगार के पर्याप्त अवसरों की व्यवस्था न हो पाना इसके संकेत मात्र हैं।

डारोन एसमोगलू और जेम्स राबिंसन के अनुसार समावेशी आर्थिक संस्थाएँ ही समावेशी बाजार विकसित कर सकती हैं।[24] समावेशी बाजार के बिना जनता अपनी योग्यता के अनुसार व्यवसाय चुनने का अवसर नहीं प्राप्त कर पाती। बाजारीकरण उन्हें बराबरी का मौका नहीं प्रदान करता; यदि उनमें व्यापार या सेवा का मेधा रहता भी

है तो बड़े व्यापारियों या कॉरपोरेट घरानों के शोषण के चलते उनके मेधा का उपयोग या विकास अवरूद्ध हो जाता है। विकास वास्तव में आम आदमी के लिए पतन का कारक बन जाता है। अमृत्य सेन, स्टि्गलिज और थॉमस पिकेटी कहते हैं कि विकास दर की वृद्धि शिक्षा, स्वास्थ्य, बालकों/बालिकाओं को पौष्टिक भोजन, महिला सुरक्षा, नागरिक सुरक्षा और जीवन-यापन की अन्य सुविधाओं को आम आदमी को उपलब्ध कराने में अभिव्यक्त नहीं होता। सामान्यतः यह बड़े पूँजीपतियों या उद्योगपतियों के विकास, होटलों या मॉलों के विकास, ट्रांसपोर्टर्स या बिल्डर्स के विकास तक सीमित रह जाता है जबकि विकास मानव की खुशहाली में प्रदर्शित होना चाहिए। अतः भारत का सामाजिक-आर्थिक विकास चाहे वह सार्वजनिक या निजी उपक्रमों के माध्यम से हुए हों। गरीबी, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति आदि मौलिक समस्याओं को दूर करने की अक्षमता के चलते पतन का कारक बन गए हैं और चुनावी नारे नेतृत्व की अवसरवादिता के सूचक।

विचारधारा के स्तर पर वामपंथ के लोग नेहरू के पक्षधर थे और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के पुरोधा होते हुए भी कई कारणों से सोवियत संघ के निकट थे। आजादी के पहले भी वे मार्क्सवाद और समाजवाद की बात किया करते थे और गांधी ने 1946 में जब प्रदेश कांग्रेस कमिटियों के बहुमत की इच्छा को ठुकराते हुए नेहरू को कार्यकारी परिषद का वाइस प्रेसिडेंट (जिसे स्वतंत्रता मिलते ही प्रधानमंत्री हो जाना था) मनोनीत किया था तो उसके कुछ वर्ष पूर्व ही कहा था कि आज नेहरू मेरी भाषा नहीं बोलते हैं लेकिन मेरी मृत्यु के बाद वे मेरी भाषा बोलेंगे। संस्थाओं के उत्थान और पतन से जुड़ा गूढ़ प्रश्न है कि क्या प्रधानमंत्रियों में नेहरू अथवा किसी अन्य प्रधानमंत्रियों, लाल बहादुर शास्त्री और मोरारजी देसाई (जिनपर भी दोषारोपण हुआ था), ने गांधी की भाषा का प्रयोग किया जिसमें सादगी, ग्रामीण सभ्यता और लघु उद्योगों के तत्व रहने थे और संसदीय संस्थाओं को करोड़पतियों एवं अपराधियों या दागियों के चंगुल से बचाना था? नेहरू के दो वाक्य– भारत के तत्कालीन 40 करोड़ जनता के लिए आश्वासनकारी थे। पहला वाक्य था ''मैं हरेक देशवासियों के आँखों के आँसू पोछ दूँगा'' और दूसरा ''मैं कालाबाजारी करने वालों को समीपवर्ती लैम्प पोस्ट पर फाँसी दे दूँगा''। नेहरू के प्रसिद्ध *ट्राइस्ट विथ डेस्टिनी* के भाषण के साथ राधाकृष्णन ने अनिवार्यता जताईः

Unless we destroy corruption in high places, root out every trace of nepotism, love of power, profiteering and black-marketing which have spoiled the good name of this great country in recent times, we will not be able to raise the standards of efficiency in administration as well as in the production and distribution of the necessary goods of life.[25]

राधाकृष्णन का 1946 में दिया गया वक्तव्य प्रमाणित करता है कि भ्रष्टाचार का भय और उस पर रोक लगाने के लिए संस्थात्मक उपाय की आवश्यकता 1968-2010

में नहीं, बल्कि 1946 में ही अनुभव की जा रही थी, भले ही चुनावी या अन्य कारणों से राजनेतागण इस पर अंकुश लगाने से प्रारंभ से ही कतराते रहे।

प्रशासनिक सुधार आयोग-1 ने 1969 में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए लोकपाल और लोकायुक्त जैसी संस्थाओं के स्थापित किए जाने की अनुशंसा की किन्तु 1968-2013 तक इन संस्थाओं से संबंधित विधेयकों के सदनों में प्रस्तुत होने पर करीब-करीब सभी राजनीतिक दलों का निषेधात्मक व्यवहार होता था जो प्रमाणित करता है कि राजनीतिक दलों की भ्रष्टाचार के विरोध में खड़े होने की न तो इच्छाशक्ति थी, न मनोबल। सशक्त लोकपाल निर्माण के लिए अरूणा राय द्वारा प्रस्तुत लोकपाल विधेयक का प्रारूप या अन्ना हजारे के नेतृत्व में आंदोलनकारियों के द्वारा प्रस्तुत प्रारूप (2011-12) भी उन्हें सक्रिय न कर सका और तत्कालीन प्रधानमंत्री की ओर से दिल्ली में जंतर-मंतर रोड की सभा में किए गए वादों से प्रधानमंत्री और उनके दल के सदस्य मुकर गए। लोक सभा में पारित होने के बाद राज्य सभा में उस विधेयक में विभिन्न राजनीतिक दलों ने इतनी बड़ी संख्या में संशोधनों का प्रस्तुतीकरण किया कि विधेयक को संसद की कमिटी में विचार के लिए भेजना पड़ा। दिल्ली विधान सभा के 70 सीटों पर जब तीन बार से विजयी कांग्रेस पार्टी को मात्र सात सीटें मिलीं और नरेन्द्र मोदी के प्रचार के बावजूद जब भाजपा बहुमत अंक के नीचे रह गयी एवं एक नई गठित *आम आदमी पार्टी* (जो संगठन या संसाधन से अधिक भ्रष्टाचार विरोधी प्रदर्शनों के आधार पर लोकप्रिय हुई थी) उभरकर आयी तो यूपीए और अन्य राजनीतिक दलों ने अतिशय लोक दबाव का अनुभव करते हुए 2013 में लोकपाल एवं लोकायुक्त विधेयक लोक सभा में पेश किया और यह अधिनियम का रूप ले सका। सर्च कमिटी के सदस्यों की योग्यता के प्रश्न अधिनियम निर्माण के उपरांत भी विवादग्रस्त हैं और 2014 से अभी भी वह संशोधनों के घेरे में है। राजनीतिक दलों के चुनावी व्यवहार, उनके संगठन में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव, आय-व्यय के लेखा-जोखा (चुनाव आयोग के 2014 के नियम-निर्माण के बाद भी) आदि का अभाव और सामान्य सदस्यों (स्टार्टा) के प्रति दल के पदाधिकारियों का अनुत्तरदायी होना और सभी दलों द्वारा (वामपंथ के कुछ दलों को छोड़कर) चुनावी उम्मीदवारों के चयन में ''सफलता'' के नाम पर अवांछनीय तत्वों की बड़ी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। 2014 से लेकर अभी हाल तक के संपन्न लोक सभा एवं विधान सभाओं के चुनाव में राजनीतिक दलों ने बड़ी संख्या में दागियों को टिकटें दी है। राजनीतिक दलों का ऐसा व्यवहार और आचरण राजनीतिक पतन का द्योतक है।

निष्कर्ष

भारत, श्रीलंका, फिलीपाइंस और ईजराइल–चारो देशों में लोकतांत्रिक संस्थाएँ एक दशक तक करीब-करीब सक्रिय रहीं।[26] भारत में 1958 में संस्थाओं को धक्का लगा जो 1968 तक संभालने लायक था किन्तु 1960–69 के बाद राजनीतिक संस्थाओं का

पतन स्पष्ट तौर पर देखा जाने लगा। पतन के सामाजिक-आर्थिक कारणों पर हमने पिछले परिच्छेद में विचार किया है। हम उससे निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अधिकतम निर्धन समाज तब तक अलोकतांत्रिक रहेंगे, जब तक वे निर्धन रहेंगे।[27] अरस्तु से लेकर लिप्सेट तक लोकतंत्र की सफलता या उसके स्थायित्व के लिए मध्य वर्ग की बड़ी संख्या में होने की अनिवार्यता पर बल डालते हैं।[28] किन्तु यदि आर्थिक विकास लोकतंत्र को संभव करता है तो राजनीतिक नेतृत्व उसे वास्तविक बनाता है।[29] दक्ष, सदाचारी और कर्तव्यनिष्ठ नेता जब लोकतंत्र को संचालित करते हैं, तब वह आगे की ओर बढ़ता है। रूस्टो भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[30] जब खेल के नियमों और प्रक्रिया पर सहमति का अभिजनों में अभाव होता है, संस्थाओं का पतन प्रारम्भ हो जाता है, जैसा हमने भारत में देखा। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, जगजीवन राम, फखरूद्दीन अली अहमद आदि के विश्वासों की अभिव्यक्ति और क्रियाकलाप ने न केवल 135 वर्ष पुरानी राजनीतिक पार्टी को तोड़ा; राजनीतिक नैतिकता के उल्लंघन और विचारधारात्मक मूल्यों से राजनीति में अस्तित्व की रक्षा करने की रणनीति ने साध्य-साधन में अंतर न करने के गांधीवादी सिद्धांत को भी तोड़कर संस्थाओं के पतन की आधारशिला रखी। आगे चलकर नियमों और वैक्तिक अधिकारों के लिए आदर की परम्परा का अभाव संस्थाओं के घोर पतन के लिए उत्तरदायी बना। अतः माइरन वाइनर की उक्ति महत्वपूर्ण है कि राजनीतिक नेतृत्व और राजनीतिक कौशल (आर्थिक-सामाजिक विकास के साथ-साथ) का योगदान जनतंत्रीकरण अर्थात् संस्थाओं के उत्थान, विकास और स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण है।[31] नेतृत्व और जनता दोनों की यह आस्था कि राजनीतिक सुव्यवस्था को कायम रखना अपने आप में उत्तम है–जनतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य गुण है।[32] चूँकि जनतंत्र में जनता को नीयत समय में अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार है, यदि उन्हें समानता, स्वतंत्रता और न्याय मिले हुए हैं और चारित्रिक गुण हैं तो इनके आधार पर नागरिक समाज संस्थाओं के स्वास्थ्य पर नियंत्रण रख सकता है और उग्रवादी एवं आतंकवादी शक्तियों को बढ़ने से रोक कर शांतिपूर्ण परिवर्तन के माध्यम से भारत मजबूत संस्थानीकरण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

संदर्भ

1. डारोन एसमोगलू एवं जेम्स ए. राबिन्सन, *व्हाई नेशंस फेलः द ऑरिजिन्स ऑफ पावर, प्रॉसपेरिटी एण्ड पॉवर्टी*, न्यूयार्कः क्राउन पब्लिशर्स, 2012.
2. गांधी के परिपक्व विचार का विस्तष्त विवेचन *हिन्द स्वराज*, 1929 और नेहरू को लिखे गये पत्रों, 1945 में है।
3. ''राज्य एक चीज है और स्वराज दूसरी चीज है। राज्य हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करता है। अहिंसा के बिना स्वराज असंभव है। इसलिए विवेकशीलता के लिए स्वराज परमावश्यक है। स्वराज एक ऐसी सरकार निर्मित करती है जिसमें सबों का शासन होता है। यह सबों की सरकार अथवा रामराज्य (ईश्वर का साम्राज्य) है।'' देखें,

विनोबा भावे, *स्वराज शास्त्रः प्रिंसिपुल्स ऑफ नन–वॉयलेंट पॉलिटिकल आर्डर* (अनु. भारतन कुमारप्पा) वर्धाः अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1955, पृ. 9; विनोबा भावे हस्त श्रम की तकनीक, चारित्रिक एकता, सेवा का अनुशासित जीवन और त्याग एवं धर्म में संपूर्ण आस्था की सीख देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि राजनीति का धर्म से विलगाव विनाश की ओर ले जायेगा। भावे, पृ. 13 देखें।

4 रबीन्द्र नाथ टैगोर के स्वतंत्र भारत की कल्पना की झलक उनके द्वारा लिखी गई कविता–संग्रह गीतांजलि में दिखाई पड़ती हैः

जहाँ न भय हो सर उँचा हो,
सबको सहज सुलभ हो ज्ञान,
जहाँ की सकरी दीवारों से
बँटे न धरती और इंसान,
जहाँ सत्य की गहराई से ही शब्दों का उद्‌गम हो,
जहाँ अथक कोशिश बांहे फैलाए परिश्कार खोजे,
जहाँ तर्क की निर्मल धारा अपनी राह नहीं खोये,
मरे पुरातन विश्वासों के तपते रेगिस्तान में
जहाँ गुरु बन तू दिखलाए
चिंतन और कर्म की राह,
चिंतन और कर्म जिनका हो नित निर्बाध विचिर विस्तार–
ऐसे स्वतंत्रता के स्वर्ग में
हे प्रभु जागे मेरा देश।
रबीन्द्र नाथ टैगोर, गीतांजलि, 35वीं कविता, नयी दिल्लीः रूपा एण्ड कं., 2002, पृ. 40 से उद्धृत।

5. स्वतंत्र भारत के बारे में उनके प्रमुख वक्तव्यों को अनेक जगहों पर उल्लेखित किया गया है।

6. डी. जी. तेंडुलकर, *महात्मा*, वोल. 7, पृ. 14; यह आश्चर्य की बात है कि इसके पूर्व प्रकाशित द *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी* के संपादकों ने इन दोनों पत्रों को प्रकाशित नहीं किया जिनकी जानकारी उन्हें अवश्य रही होगी।

7. एम. के. गांधी, *हिन्द स्वराज*, अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, पृ. 55-56.

8. *वही.*

9. ल्वाईड आई. रूडोल्फ और सुसेन एच. रूडोल्फ, *पोस्ट मॉडर्न गांधी एण्ड अदर ऐसेज*, दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पेपर बैक, 2009 में उद्धृत, पृ. 29.

10. *वही*, पृ. 67, गांधी द्वारा 4 जनवरी 1928 में नेहरू को लिखे पत्र में इसे जल्दीबाजी में लिया गया कदम ("hasty Step") कहा गया।

11. *वही*, अध्याय 2.

12 *वही*, पृ. 62.

13. अय्यर कमीशन, *रिपोर्ट्स ऑफ इन्क्वाईरी अगेन्स्ट वन चीफ मिनिस्टर एण्ड फाइव मिनिस्टर्स*, पटना, गवर्नमेंट ऑफ बिहार, 1970.

14. *मधोलकर कमीशन ऑफ इन्क्वाईरी रिपोर्ट ऑन द चार्जेज अगेन्स्ट 14 एक्स -यूनाइटेड*

फ्रंट मिनिस्टर्स ऑफ बिहार, पटना, द सुपेरिटेन्डेंट सेक्रेटेरियट प्रेस, 1970.

15. *एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म्स कमीशन*, अप्रैल 2009.
16. *वही.*
17. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, 'द डॉन ऑफ मार्डन इंडिया', *द ग्रेट स्पीचेज ऑफ मार्डन इंडिया*, रूद्रांग्सू मुखर्जी द्वारा संपादित, इंडियाः रैण्डम हाउस, 2011.
18. एम. के. गांधी, *हिन्द स्वराज*, उपर्युक्त, पृ. 55-56; उन्होंने 1939 में भी कहा कि वे 1909 में लिखित विचारों पर कायम हैं।
19. विनोद खोसला का व्यालोक द्वारा अनुवादित फोर्ब्स से प्राप्त लेख ''और हमसे आगे निकल जाएगा मशीनी दिमाग'' प्रभात खबर, पटना, 20 नवम्बर 2014 में प्रकाशित है और उस लेख के विचार यहां प्रस्तुत हैं।
20. *वही.*
21. उपर्युक्त में उद्धृत.
22. *वही.*
23. थॉमस पिकेटी, *कैपिटल इन द टवेंटीफर्स्ट सेन्चुरी*, 2014 में फ्रैंच भाषा से अनुवादित।
24. डारोन एसमोगलू एवं जेम्स ए. राबिन्सन, *उपर्युक्त.*
25. राधाकृष्णन, *उपर्युक्त.*
26. सैमुअल पी. हटिंग्टन, *द थर्ड वेव*, दिल्लीः आदर्श बुक्स, 2010, पृ. 19.
27. *वही*, पृ. 315 में भी यही विचार व्यक्त है।
28. अरस्तू, *द पॉलिटिक्स* (अनु. टी. ए. सिन्क्लेयर), पेंग्यून बुक्स, 1962 और एस. एम. लिप्सेट, *पॉलिटिकल मैन*, अर्नाल्ड-हैनमन, इंडिया, 1960.
29. हटिंग्टन, *उपर्युक्त*, पृ. 316.
30. अ. रस्टो, ''ट्रांजिशन्स टू डेमोक्रेसीः टूवार्ड अ डाइनेमिक मॉडल'', *कम्परेटिव पॉलिटिक्स*, अप्रैल 1970, पृ. 337.
31. हटिंग्टन, उपर्युक्त में उद्धृत, पृ. 39.
32. सैमुअल पी. हटिंग्टन, *द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन्स एण्ड द रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड ऑर्डर*, गुड़गांवः पेंग्यून बुक्स, 1997; देखें, हटिंग्टन, *पॉलिटिकल ऑर्डर इन द चेंजिंग सोसाइटिज*।